४·३ v2

ॐ

५ ब्रह्मचर्य्य

मनुष्य के मित्रों का अन्त नहीं है, किन्तु इस संसार में यथार्थ मित्र दुर्लभ हैं। क्योंकि माया-मुग्ध मानव आत्म-
पहचान चुका है, किसी अन्य सुख या
को वैसी नहीं हुई है। यही कारण है
अर्थात् सम्पद् के मित्रों को विपद के
वशतारूप दुष्कृति के लिए पश्चात्ताप
है। उसने स्वावलम्बी बनना नहीं
कोई दूसरा सहायता का हाथ समेट
ता है, और इतने दिनों तक अपने ऊपर
कारण ही आज वह भगवान् का भी
होता है। अर्थात् आत्मशक्ति में
अशान्ति का जीवन्त विग्रह बना देती

स्वावलम्बन

इस संसार में शान्ति कौन नहीं चाहता, किन्तु जो निर्भर करना नहीं जानता, उसके लिए शान्ति नहीं है। आत्म-निर्भरता के द्वारा ही भगवान् की निर्भरता मिलती है, इसी तरह भगवान् पर निर्भर करने से ही आप ही आप आत्मनिर्भरता आ जाती है। इसी लिए मनुष्य विपद से नहीं डरता, दुःखों की परवा नहीं करता, कष्ट को कष्ट नहीं मानता। इस कारण ही साधक के लिए निर्भरता की अवस्था महामङ्गलकर और परम सौभाग्यसूचक अवस्था होती है। युद्धक्षेत्र का बलदुर्धर्ष सैनिक अथवा सभी लोगों की अवहेला का पात्र दुबला-पतला समाज-सुधारक—ये दोनों ही निर्भरता के बल से बलवान् हैं। निर्भरता मनुष्य को निर्भय बनाती है, इसी लिए निर्जन वन में भी मनुष्य मित्रहीन नहीं रहता। तुमलोगों में से प्रत्येक को ही मैं जीवन के प्रत्येक पादक्षेप में ऐसा ही मित्रयुक्त देखना चाहता हूँ। अर्थात् तुमको मैं आलस्यहीन और निःशङ्क देखना चाहता हूँ। यही कारण है कि मैं तुमलोगों को ब्रह्मचर्य की मंगल-कथा सुना रहा हूँ।

ब्रह्मचर्य के द्वारा तुमलोगों को यथार्थ मित्र मिलेगा और तुमलोग कपटी मित्रों को पहचान जाओगे। इसी लिए आज तुमको मैंने ब्रह्मचर्यावलम्बी बना देना चाहा है।

तुम स्वीकार करो या छिपा ही रक्खो, तुमलोगों की सेवा करते समय मुझे निश्चित रूपसे यह जानकारी हो गयी है कि प्रति हजार में नौ सौ निनानवे युवक ही आज आत्महत्या के अपराध के अपराधी हैं। सामाजिक शासन की विशृंखला, गार्हस्थ्य पवित्रता का व्यभिचार और भारतीय शिक्षा-संस्कार में उलटफेर—इन तीन प्रधान कारणों से आजकल के किशोर और युवक अपने चरित्र-निर्माण का सुअवसर नहीं पा रहे हैं। परन्तु विसदृश चिन्ता-प्रवाह से परिचालित होकर दुर्जन-संसर्ग में पड़ आत्म-अपचय के कलुषित कदभ्यास से जर्जरित हो चुके हैं। आर्य-सन्तानों की नित्य पालनीय विधियों को अमान्य कर आजकल के वालक और युवक वीर्यविहीन जीर्ण शरीर से अपचयित क्षीण मस्तिष्क में चन्दन-भार ढोनेवाले गधे की तरह विश्वविद्यालय के ढेर के ढेर ग्रन्थों के बोझ ढो रहे हैं। ईश्वर-विश्वास खोकर, श्रद्धा-भक्ति और अन्य सद्‌गुणों से वञ्चित रहकर, मनुष्य होकर भी वे अमानव बने रहते हैं। त्यागावतार जगत्पावन, अखण्ड पवित्रता के आधार-स्वरूप सद्गुरु का सत्संग न मिलने से वे उन्नतिमुखी सात्त्विकी वृत्तियों को विकसित करने में असमर्थ हैं और धर्म में कर्म में मनुष्योचित्त यथार्थ महत्त्व अर्जन करने में असमर्थ रह जाते हैं।

आत्म-अपचय

इस अवस्था का प्रतिकार तुरन्त होना आवश्यक है। इस लिए व्यक्तिगत रूपसे जैसी आवश्यकता आत्मगठन की है, वैसी ही आवश्यकता आत्मगत ऊँचे आदर्शों को प्रचार के द्वारा फैला देने की भी है। क्योंकि, ब्रह्मचर्यका प्रचार करना जिनका नित्य कर्तव्य है, उन लोगों ने अपनी इच्छा से हो या अनिच्छा से ही हो, अनायास ही इसकी उपेक्षा की है। अज्ञान से अन्धे बने जीवों में ब्रह्मज्ञान वितरण करने के लिए जिन्होंने योगी, दण्डी, संन्यासी या परमहंस का पुण्यमय धर्म-संस्कार ग्रहण किया है, देश के दस आदमियों के और संसार के दुर्भाग्यवश उनमें से बहुतेरे ही आज मानो भूल ही गये हैं कि, ब्रह्मचर्य-विहीन अग्राही कुपात्र में ब्रह्मज्ञान की ज्योति नहीं पहुँचती। सहज विश्वासी मानव-समाज ने जिनके चरणों के नीचे अपना ध्यानधर्म सब कुछ समर्पण कर रक्खा है, वे ही कुलगुरुगण इन दिनों अपना वार्षिक कर अदा करने की अतिरिक्त चिन्ताओं के झमेले सिर पर ओढ़ लेने को तैयार नहीं हैं। दक्षिणा-वञ्चित अन्नाभाव से पीड़ित अथवा भोजन-भट्ट कुलपुरोहित अत्यन्त विवशता में पड़कर सिर की चोटी और ललाट का तिलक किसी तरह दुःख-कष्ट से बचाये हुए हैं। आजकल आयुर्वेद-

ब्रह्मचर्य्य की आवश्यकता

विशारदगण सोदकों की विक्री करने में ही व्यस्त हैं और शक्ति-शाली लेखक कामातुर नायक-नायिकाओं के मनस्तत्व का विश्लेषण करने में निमग्न हैं। फलस्वरूप, समाजके क्षत-विक्षत सर्वाङ्ग में ब्रह्मचर्य का शान्ति-प्रलेप उन्हीं लोगों को लगाना पड़ेगा, जिनको असंयम की आग से जल भुनकर, बाद को कल्याण का मार्ग मिला है। इसी लिए वर्तमान काल के प्रत्येक ब्रह्मचर्याभ्यासी को आंशिक रूपसे प्रचारक का कार्यभार भी ग्रहण करना पड़ेगा।

समग्र देश में व्यापक रूपसे ब्रह्मचर्य-आश्रमों की स्थापना करने में बहुत विघ्न हैं। इन सभी बाधाओं को अतिक्रम करके देश में गुरुकुलों की पुनः प्रतिष्ठा करने में कुछ समय लगेगा और बहुत त्याग की आवश्यकता पड़ेगी। इसमें सन्देह नहीं कि सर्वस्व सौंप देनेवाले ब्रह्मचर्य-प्रचारक अपनी हड्डियों और पँजरियों को चूर्ण-विचूर्ण कर देने की दशा में भी इन सभी बाधाओं को पार कर जायेंगे; किन्तु प्रत्येक बड़ा काम करने में ही समय लगता है। ऐसे समय में तुम लोग केवल बैठे ही क्यों रहोगे ? अपने ब्रह्मचर्य को अटूट रखने की चेष्टा तभी सार्थक होगी, जब दूसरों को भी इस शुभ मार्ग में खींच लाने की चेष्टा में तुमको कोई अभाव न होगा। स्वयं कल्याणवान् होने के साथ ही साथ संसार के सभी लोगों में कल्याण का वह भाग बाँट देने में ही वृहत्तर कल्याण प्राप्त करने की कुञ्जी छिपी हुई है।

अपने जीवन की चरितार्थता के साथ ही साथ सबके जीवनाकाश में सुख-सूर्य का उदय देखने में तुमको अवश्य ही प्रयत्नशील होना पड़ेगा, नहीं तो तुम्हारे जीवन का गौरव मलिन रह जायगा। असंयत जीवन का दुःख और उसकी वेदना यदि तुम समझ चुके हो तो उस हालत में दूसरों को सावधान कर देने का अधिकार और जरूरत तुमको है।

तुमको इस रीति से चलना पड़ेगा, मानो तुम्हारे ही दृष्टान्त सैकड़ों दर्शको के जीवन में उपदेश का काम करें। उसी हालत में धीरे-धीरे देशव्यापी कल्याण-संस्थाओं की स्थापना के लिए

दृष्टान्तों की शक्ति

अनुकूल अवस्था उत्पन्न होती रहेगी; दिन पर दिन जनमत बदलता रहेगा और कल्याण-कर्मियों की संख्या बढ़ती रहेगी। तुमलोगों के पवित्र और उन्नत महान् जीवन की ज्योति और तुमलोगों की तपोनिष्ठा से उत्पन्न अमोघ प्रभाव प्रतिकूल आचरण करनेवाले के भी हृदय को द्रवित करेगा और सभी विरोधियों को अनजान में गरदन पकड़ कर नतमस्तक कर देगा। ब्रह्मचर्य्य-शिक्षा की आवश्यकता स्वीकार करके भी जो लोग उपयुक्त सत्साहस के अभाव से प्रचलित नियम-बन्धनों को छिन्न करके या उस राह से मुड़कर बच निकालने में समर्थ नहीं हो रहे हैं, वे तुम लोगों के चमकदार जीवन के उदाहरण से समुत्साहित होकर अपने-अपने वंशधरों को निःस्वार्थकर्मी त्यागियों

के हाथ में निःसङ्कोच सौंप देने का साहस पा जायेंगे। उदाहरणों का अभाव रहने के ही कारण मनुष्य सन्देह करते हैं, डरते हैं, गलत समझते हैं। आज तुम लोगों को अपने-अपने जीवन-वैशिष्ट्य का विकास कर उसके द्वारा सर्वसाधारण के कुसंस्कार परिवेष्टित तमसाच्छन्न मन से सन्देह दूर कर देना होगा, संशय उन्मूलन कर देना होगा, भ्रान्ति मिटा देनी पड़ेगी।—उदाहरण ही उदाहरण उत्पन्न करता है।

सर्वदा स्मरण रक्खो,—"मरणं विन्दुपातेन, जीवनं विन्दु-धारणात्।" वीर्यक्षय ही मृत्यु है, वीर्यधारण ही जीवन है।

सतर्कता की आवश्यकता

कभी भूल मत जाना जिसका जितना वीर्यक्षय होता है, उसको ही रोगों का उतना भय रहता है। ऐसी चिन्ताओं, ऐसे वचनों, दृश्यों और कार्यों से पूर्ण प्रयत्न से दूर रहना पड़ेगा जिनसे वीर्य का नाश होता है या वीर्य पतला होता है। आत्म-रक्षा में सदा सतर्कता रहनी चाहिये। पूर्वजीवन के शारीरिक या मानसिक अभ्यास-दोष से कभी भ्रमवश सतर्कता में कमी हो जाय तो हताश न होकर सुदृढ़तर सङ्कल्प कर लें, अपनी दृष्टि को और भी सुतीक्ष्ण बना दें। जिससे वीर्य नाश करनेवाली या पतला करनेवाली किसी भी चिन्ता में या काम में मति न जाय।

जो कुछ हम आहार के रूप में अपने शरीर में ग्रहण करते हैं,

वही जठराग्नि द्वारा पचता है और उसका सार भाग रस नामक धातु में परिणत हो जाता है और जो वर्जनीय अंश रहता है वही मल-मूत्रादि रूप में बाहर निकल जाता है। इसी रस का सार भाग यकृत् के उत्ताप से पक जाने पर इसी प्रकार रक्त का सार भाग मांस में, मांस का सार भाग मेद में, मेद का सार भाग हड्डी में, हड्डी का सार भाग मज्जा में और सब के अन्त में मज्जा का सार भाग शुक्र या वीर्य नामक जीवन-प्रद महाधातु में परिणत हो जाता है। जो खाद्य हम ग्रहण करते हैं, उसके उस प्रकार शुक्र में परिणत होने में कम से कम तीन दिन लग जाते हैं और एक बिन्दु वीर्य की उत्पत्ति के लिए शरीर में कम से कम आधा सेर विशुद्ध रक्त की उत्पत्ति आवश्यक है। इसी लिए किसी-किसीने हिसाब लगाकर बताया है कि एक बिन्दु विशुद्ध वीर्य उत्पन्न होने में कम से कम छत्तीस दिन तक खाद्य-द्रव्य का अच्छी तरह हजम हो जाना और सब प्रकार वीर्यक्षय बन्द हो जाना आवश्यक है। शरीर के सर्वश्रेष्ठ परमाणुओं से ही वीर्य तैयार होता है, इस कारण केवल वीर्य का क्षय होने से ही रस-क्षय, रक्त-क्षय, मांस-क्षय, अस्थि-क्षय और शुक्र का भी जो सारभूत तेजोमय पदार्थ है, उस ओज धातु का भी क्षय हो जाता है। इस लिए सज्जनो! सावधान! भूल से भी कभी इस महावस्तु को क्षय करनेवाले किसी भी काम में अपने को मत लगाना।

वीर्य की उत्पत्ति

दूध में जिस तरह मक्खन पूर्ण रूप से मिला रहता है, शरीर का सारांश वीर्य भी उसी तरह रक्त के साथ एकदम अविच्छिन्न भाव से मिला रहता है। दूध में मथनी से बार-बार मथते-मथते जिस तरह मक्खन पृथक् होकर निकल आता है, उसी तरह जिन कामों से धातु-क्षय सम्बन्धी स्नायुमण्डली उत्तेजित होती है, अथवा उन शिराओं, उपशिराओं और धमनियों के बीच से रक्त का प्रवाह प्रबल वेग से बह चलता है, उन सभी कामों से भी अण्डकोष की सहायता से रक्त से वीर्य पृथक् हो जाता है और शुक्रकोष में पहुँचकर खर्च के निमित्त सञ्चित हो जाता है।

वीर्य का रहना और क्षय

तुम संक्षेप में इतना याद रख सकते हो कि जो कुछ भी स्नायु को उत्तेजित करनेवाला है, वही आंशिक रूप से ब्रह्मचर्य्य का नाश करनेवाला है और जो कुछ स्नायु को स्निग्ध करनेवाला है वही ब्रह्मचर्य्य का सञ्चयिता और हितकारक है।

ब्राह्म मुहूर्त में अर्थात् सूर्योदय के चार घड़ी पूर्व नींद से उठ जाना चाहिये। जागते हुए कभी पड़े न रहना चाहिये,—जाग जाने के साथ ही इष्ट देव का परम महानाम स्मरण और वन्दना करते-करते शय्या त्याग करना चाहिये।

"खाकर मलत्याग करता है
सोता हुआ जागता रहता है
वह भला किस काम का मानव होगा ?"

नींद से उठकर मलमूत्र त्याग करना चाहिये। शौच के उपरान्त आम, नीम, खदिर आदि की टहनी से अच्छी तरह दाँतों को साफ करना चाहिये। जीभ साफ करने की सींक से या दाँतून फाड़कर उसके फटे पतले खण्ड से जीभ को पोंछ कर साफ कर देना चाहिये और गले के भीतरी भाग में अंगुली डाल कर उसे भी अच्छी तरह साफ कर देना चाहिये। ठंढे जल से आखों को सतर्कता से धो देना चाहिये और आँखों को खोलकर सताईस बार भौंहों के बीच जल की छींटें डालनी चाहिये। तीनों समय स्नान का अभ्यास न रहने पर अँगौछे से शरीर के ढके या खुले सभी भागों को पोंछ देना चाहिये। प्रातःकाल व्यायाम का अभ्यास रहने पर मलमूत्र त्याग के वाद साधारण भाव से हाथ-मुँह धोकर व्यायाम करके उपयुक्त विश्राम कर लेना चाहिये, उसके वाद स्नान करना चाहिये। और स्नान करते समय सभी अंगों को विशुद्ध करना चाहिये। मलत्याग के सम्वन्ध में सर्वदा सचेत रहना चाहिये। मल का वेग न मालूम होने पर भी प्रति दिन दो वार निर्दिष्ट समय पर मलत्याग के स्थान पर जरूर जाना चाहिये।

प्रातःकालीन कर्तव्य

"सुवह शाम जो मैदान जाता है,
उसका पैसा क्या वैद्य पाता है ?"

प्रातःस्नान के बाद उपासना करनी चाहिये। अपने-अपने धर्म के अनुसार ग्रन्थ (हिन्दुओं के लिए गीता, अखण्ड लोगों के लिए अखण्ड-संहिता अवश्य पठनीय है) अध्ययन, भजन या कीर्तन, गायत्री-जप या गुरुप्रदत्त नाम की सेवा आदि के द्वारा उपासना करनी चाहिये। जिनको अब तक सद्‌गुरु की कृपा नहीं मिली है, उन्हें भगवान से तेज, शक्ति, वीर्य, ज्ञान, कर्म-तत्परता, सत्साहस, मनोयोग, परोपकारेच्छा आदि के लिए प्रार्थना करनी चाहिये। जो दीक्षा पा चुके हैं, उन्हें गुरु की बतायी हुई साधना को सभी उपासनाओं से श्रेष्ठ मान लेना चाहिये। जब तक चित्त में शान्ति नहीं आ जाती तब तक उपासना अवश्य करनी चाहिये। सभी कर्तव्य सूर्योदय के पूर्व ही सुसम्पन्न हो जाना आवश्यक है।

उपासना

प्रातःकाल ही हो या सायंकाल ही हो, कम से एक समय तो तुमको अवश्य ही व्यायाम करना चाहिये। बारह वर्ष से कम उम्र के बालकों के लिए नियमबद्ध व्यायाम की अपेक्षा खेलकूद ही ठीक है। किन्तु बारह वर्ष से लेकर उनतीस वर्ष तक के बालकों और युवकों के लिए नियमित और पद्धतिबद्ध व्यायाम अनिवार्य मानना चाहिये। इसी उम्र में शरीर को श्रेष्ठ गठन प्राप्त होता है। इस लिए

व्यायाम

जो लोग इस समय खूब कठिन व्यायाम के द्वारा शरीर की प्रत्येक स्नायु और मांसपेशी को वज्रवत् दृढ़ बना देने में आलस्य करते हैं, वे बहुत ही अभागे हैं इसमें सन्देह नहीं। सुयोग के रहते सुयोग का दुर्व्यवहार करके जिन्होंने शरीर-गठन नहीं किया है, वे जैसे अभागे हैं, भगवान् ने जिनको जन्म से ही अन्धा और लंगड़ा बनाया है, उनको मैं उतना अभागा नहीं समझता। "राममूर्ति" या "भीमभवानी" कहकर लोग मजाक करेंगे, इस भय से जो लोग व्यायाम-चर्चा का सुयोग ग्रहण नहीं करते, वे महा मूर्ख हैं। निन्दा-व्यंग्य से संकुचित मत हो जाना। जीवन का श्रेष्ठ समय चला जा रहा है। एक बार जाने पर फिर वह नहीं लौटेगा। उन्नति के मार्ग में जो लोग समालोचना के काँटे फेंकते रहते हैं उनमें से कोई भी तुम्हारा जीवन अगठित रहने पर विपत्ति के समय आकर तिनके से भी तुमको सहायता न देंगे। किन्तु यदि प्रचुर शक्ति, सामर्थ्य और कार्यक्षमता अर्जन कर सकोगे तो, इनमें से प्रत्येक ही एक दिन विपद्-आपद् में तुम्हारी ही सहायता माँगेगे।

निन्दा की उपेक्षा करो

संसार की यही रीति है, सभी बलवान के भक्त हैं। आज यदि इनकी समालोचना की कटुता चुपचाप सहकर एकान्त चित्त से जीवन गठित कर लोगे तो कल ही इनके मुख से प्रशंसा की ध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी। उनतीस वर्ष की उम्र

के पहले ही शरीर की जितनी सुन्दरता वढ़ सके वढ़ा देनी पड़ेगी, क्योंकि इसके वाद शरीर वहुत अधिक नहीं वढ़ता। इस कारण किसी वाधा, असुविधा, निन्दा या तिरस्कार की परवा करने का अवसर तुमको नहीं है। आज से ही तुम व्यायाम आरम्भ कर दो, पचास वर्ष की उम्र के पूर्व तक फिर एक दिन के लिए भी उसे छोड़ देने का विचार मत करना। इस समय तक कठोर भाव से ही व्यायाम की साधना करनी पड़ेगी। उत्तर भारतीय पहलवान वृहस्पतिवार को और पाश्चात्य अर्थात् युरोपीय रविवार को व्यायाम छोड़ देते हैं। इच्छा हो तो सप्ताह में एक दिन व्यायाम छोड़ देने का यह नियम पालन किया जा सकता है।

कई दिनों के वाद व्यायाम का परिमाण कुछ-कुछ लगातार वढ़ाते जाना चाहिये। किन्तु सर्वदा स्मरण रखना होगा, व्यायाम के अभ्यास में पूरी सफलता पाने के लिए तुमको अपने

व्यायामकालीन मन की एकाग्रता

सम्पूर्ण मन को शरीर की मांस-पेशियों में निवद्ध रखना चाहिये। इस समय मन को दूसरी तरफ दौड़ लगाने देने से व्यायाम का यथार्थ उद्देश्य व्यर्थ हो जाता है। समूचा शरीर और प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग तुम्हारे हुकुम के नौकर मात्र हैं यह वात अच्छी तरह याद रखनी चाहिये। नौकर के ऊपर मालिक की पूरी दृष्टि न

रहने से वह मालिक को धोखा देता है। इस कारण जिस अंग का व्यायाम चल रहा हो, उस अंग में मन को स्थिर रखना चाहिये। मांस-पेशियों को सिकोड़ने और फैलाने का कार्य जहाँ तक सम्भव हो धीरे-धीरे और कष्ट के साथ सम्पन्न करना चाहिये। अत्यन्त कष्टसाध्य व्यायाम थोड़ा करने की अपेक्षा सहजसाध्य व्यायाम अधिक करना अच्छा है। शरीर को पुष्ट और कष्ट-सहिष्णु बनाना ही व्यायाम का प्रधान उद्देश्य है। मन को जैसे तैसे फेंक देने से व्यायाम करना न करना प्रायः समान हो जाता है। व्यायाम करते समय नाक-मुख को विकृत मत करो, दाँतो को कटकटाना बन्द करो, आँखों को विस्फारित मत करो।

व्यायामकालीन विधि-निषेध

शरीर का सहज-सरल भाव मत बिगाड़ो, अनावश्यक अंग-सञ्चालन मत करो, शब्दों के साथ या अत्यन्त तेज श्वास-प्रश्वास लेना-छोड़ना बन्द रक्खो, व्यायाम में नियुक्त अंग-प्रत्यंगों को अकस्मात् हिलाना छोड़ दो। मुख को सौम्य, शान्त और सहास्य रख धीरे-धीरे श्वास लेना-छोड़ना चाहिये। प्रत्येक पेशी को अति धीरे-धीरे और उससे भी अधिक दृढ़ता के साथ सिकोड़ और पसार कर पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ व्यायाम करना चाहिये। जब तक करो, गहरी श्रद्धा के ही साथ करो। बेगारी की पूर्ति

के लिए अथवा दिन भर का पाप दूर करने के लिए व्यायाम का मिथ्या अभिनय मत करो। तुमसे विश्व की मानव जाति का असीम कल्याण अवश्य ही होगा और देश की, दस जनों की, जाति की और जगत् की सेवा करने की योग्यता और सामर्थ्य तुम्हारे भीतर छिपा हुआ है, इस विश्वास में सुदृढ़ विश्वासी होकर श्रद्धा-प्रबुद्ध चित्त से व्यायाम की साधना में अपने को लगा देना तुम्हारा कर्तव्य है। श्वास-प्रश्वास के सम्बन्ध में संक्षिप्त नियम यह है कि, पेशियों को सिकोड़ने के साथ श्वास लो और

व्यायामकालीन श्वास-प्रश्वास

फैलाने के साथ प्रश्वास छोड़ो। किसी-किसी अवस्था में निःश्वास बन्द कर देने की भी जरूरत पड़ती है, कुछ दिन व्यायाम का अभ्यास करने के बाद उसे तुम स्वयं ही समझ जाओगे अथवा जो लोग व्यायाम-तत्त्व के जानकार हैं, उनसे सीख लेना उचित है। व्यायामकाल के अतिरिक्त अन्यान्य सब समय में श्वास-प्रश्वास की गभीरता और मृदुता की तरफ तीखी दृष्टि रखनी चाहिये। श्वास-प्रश्वास ही प्राणियों के प्राण हैं। इनकी चञ्चलता से मन चञ्चल होता है और मन की चञ्चलता से शरीर की सारभूत वीर्य-धातु चञ्चल हो जाती है। प्राणवायु की स्थिरता ला सकने से मन आप ही स्थिर हो जाता है, बुद्धि स्वतः ही प्रसन्न होती है, मेधा बढ़ जाती है, और वीर्य की चञ्चलता घट जाती है और उसकी क्षय-प्रवणता दूर हो जाती है।

इसी लिए हमारे त्रिलोक-पूजित महायोगीश्वर पूर्वपुरुषोंने प्राणायाम नामक प्राण-शिल्प का आविष्कार किया था। शिव, शुकदेव, नारद, कपिल, पतञ्जलि, राजर्षि जनक, तपस्विनी सुलभा, याज्ञवल्क्य, हनुमान और अपेक्षाकृत आधुनिक काल में घेरण्ड मुनि, मीननाथ, गोरखनाथ प्रभृति महापुरुषोंने हजारों प्रकार के प्राणायाम प्रचलित किये थे। देश-काल-पात्र के अनुपयोगी होने से उन प्राणायामों के अधिकांश ही लुप्त हो गये हैं। संस्कृत योग-शास्त्रादि में जिन प्राणायामों का विवरण मिलता है, वर्तमान काल के यथार्थ योगियों में भी उन सब पद्धतियों का विशेष प्रचलन नहीं है। जो प्राणायाम सब प्रकार से प्रतिक्रियाहीन है और सैकड़ों प्रकार के विधि-निषेधों के वज्रबन्धनों से मुक्त है, वे ही विरोधहीन, उपद्रवरहित, उद्वेगहीन प्राणायाम योगियों के नित्य अभ्यासों के माध्यम से शिष्य-प्रशिष्यानुक्रम से ही बचे हुए हैं, और ग्रन्थों में लिखे हुए प्राणायाम जादूघर में सञ्चित मिस्र की शव-देह की तरह हमारे अद्भुत कर्मी पूर्वपुरुषों की अलौकिक प्रतिभा के परिचय स्थल मात्र रह गये हैं।

प्राणायाम

इस कारण तुमलोगों को व्यायाम के अतिरिक्त अन्य समय में श्वास-प्रश्वास को इच्छापूर्वक अल्प दूरगामी या दीर्घकाल स्थायी बनाने की चेष्टा न करनी चाहिये। किन्तु श्वास-प्रश्वास की गति कब किस तरह चलती रही है, उस तरफ सर्वदा तीव्र

श्वास-प्रश्वास में लक्ष्य रखना

लक्ष्य रखना चाहिये। कक्षा के दुष्ट लड़के की तरफ मास्टर साहब के एकाग्र दृष्टि-से ताकते रहने से छात्र की दुष्टता जैसे आप ही आप दूर हो जाती है, उसी तरह श्वास-प्रश्वास की तरफ भी मन का एकाग्र लक्ष्य पड़ जाने के साथ ही अनायास प्रयत्न के विना और वलप्रयोग के विना ही प्राणवायु स्वाभाविक रूप से धीरता और गभीरता प्राप्त करती है।

खुली हवा में ही व्यायाम करना उचित है। जाड़े के दिनों में शरीर में एक गंजी पहन कर या ढके हुए स्थान में नंगे शरीर से, और गरमी के दिनों में सर्वदा नंगे शरीर व्यायाम करना चाहिये। सुविधा होने पर शरीर का सिकुड़ना और फैलना लक्ष्य करने के लिए सामने-पीछे दो, अथवा केवल सामने ही एक वड़ा आईना रखकर व्यायाम करना चाहिये। इससे मन को संयत करने की सुविधा होती है, इस लिए व्यायाम अधिकतर

व्यायाम

चित्ताकर्षक और कार्यकर होता है। एक प्रकार का व्यायाम पूरा करके दूसरे प्रकार का व्यायाम करने के पहले दो-एक मिनट विश्राम कर पेशियों को जरा शिथिल वना देना चाहिये। सभी ऋतुओं में ही व्यायाम किया जाता है, प्रति दिन व्यायाम का अभ्यास करनेवालों के लिए कोई भी ऋतु वर्जनीय नहीं है। कास, श्वास, दमा, क्षय, रक्तपित्त और शोष रोगी के लिए अधिकांश स्थलों में

ही व्यायाम निषिद्ध है। उनके लिए भ्रमण ही हितकारी है।

जब तक जीभ कुछ सूख नहीं जाती, प्यास नहीं लगती, ललाट, नाक, शरीर के जोड़ों और दोनों काँखों में थोड़ा-थोड़ा पसीना नहीं निकलने लगता, तब तक व्यायाम जारी रखना चाहिये।

प्रातःकाल और सन्ध्याकाल ही व्यायाम के लिए प्रशस्त है, दूसरे समयों में व्यायाम करने से शरीर का विशेष कोई उपकार नहीं होता।

व्यायाम के बाद तुरन्त ही स्नान, आहार या जलपान निषिद्ध है। कमरे में व्यायाम करने पर जब तक थकावट दूर नहीं हो जाती, शरीर का पसीना सूख नहीं जाता, और हृत्-स्पन्दन की स्वाभाविक गति लौट नहीं आती तब तक अकस्मात् खुली वायु में आना उचित नहीं है। व्यायाम के बाद तुरन्त ही स्नान अहितकर है।

व्यायामकारी के लिए घी, दूध, बादाम प्रभृति पुष्टिकर खाद्य मिलना अच्छी बात है। तुमलोगों में से बहुतों को ही न मिलेगा मैं जानता हूँ। इस लिए घी-दूध के लिए हाय-हाय न

व्यायाम और आहार

करके जिसको जो भी आहार-सामग्री मिल जाय, उसके ही ऊपर निर्भर करके शारीरिक शक्ति का सञ्चय करना चाहिये। दाल-भात खाकर प्रचण्ड शक्ति सञ्चय करनेवाले

सैकड़ों व्यक्ति भात खानेवाले बंग प्रान्त में ही मौजूद हैं। तुम वीर्य क्षय मत करो, खाद्यवस्तु को अच्छी तरह चबाने में ढिलाई मत करो—नियमित व्यायाम करने में एक दिन भी नागा मत करो। इन तीन नियमों का पालन करके केवल साग-पात ही खाते रहने पर भी तुम्हारे शरीर में सिंह की शक्ति आ जायगी। जितना ही साधारण खाद्य क्यों न खाओ, उसका पूरा सार यदि शरीर में रख सकोगे, तभी तुम संसार के श्रेष्ठ वीरों में परिणत हो सकोगे। मल के साथ खाद्यवस्तु का विन्दुमात्र सारांश भी बाहर न निकलने देना—यही सङ्कल्प लेकर भोजन करना चाहिये। दूध-घी मिल जाय तो मछली-मांस छोड़ ही देना चाहिये। नहीं तो अपनी-अपनी कुल-प्रथा या प्रादेशिक प्रथा के अनुसार शरीर-रक्षा के लिए आमिष आहार भी किया जा सकता है। अतिरिक्त मछली-मांस खाना ब्रह्मचर्य्य-रक्षार्थी के लिए हानिकर है। काम-चिन्ता और लोभ के साथ सात्त्विक खाद्य खाने से भी उसका फल तामसिक ही होता है, यह तुम सर्वदा याद रखना।

जो लोग प्रातःकाल व्यायाम नहीं करते, उन्हें उपासनादि के बाद प्रातःकालीन भ्रमण करना चाहिये। प्रातःकालीन भ्रमण से लौट कर पिता-माता प्रभृति गुरुजनों को प्रणाम करना चाहिये। मन ही मन प्रणाम करने से काम न चलेगा, भक्ति के साथ पैर छूकर प्रणाम करना चाहिये। दूसरे गुरुजन न मिल

माता-पिता की वन्दना

सकें तो केवल पिता-माता की पाद-वन्दना करनी चाहिये। जब कोई भी दूसरा न मिले तब कमसे कम जननी को विश्व-जगत्-प्रसविनी समझकर अवश्य ही प्रणाम करना चाहिये। वे यदि स्वर्गगता हों, तो उनको देशमातृका और जगज्जननी के साथ अभेद ज्ञान से "मातरम्" कहकर मन ही मन प्रणाम करना चाहिये।

खुली हवा और खुले प्रकाश में अध्ययन करना चाहिये। आसन लगा बैठ कर, पीठ की रीढ़ को एक सरल रेखा में रख लो, शरीर और मस्तक को स्थिर बना, एक छोटी सी चौकी, बक्स या डेस्क के ऊपर पुस्तक रखकर पढ़ना शुरू करना चाहिये। पाठाभ्यास करते समय झूलना या हिलना-डोलना अनुचित है।

अध्ययन

स्पष्ट स्वर से पढ़ना चाहिये,—स्पष्ट उच्चारण चिन्ताशक्ति में स्पष्टता लाता है। पढ़ते समय प्रत्येक शब्द के अर्थ पर विचार करना चाहिये। मन को एकाग्र रक्खे विना अध्ययन और प्रलाप-वचन एक ही बात है। दिन-रात पढ़कर आँखों को चौपट करने और सिर के बालों को पकाने की जरूरत नहीं है,—थोड़े समय ही पढ़ना चाहिये। किन्तु जितनी देर तक पढ़ो—दूसरी तरफ दृष्टि मत ले जाओ, दूसरी बातों में मन मत लगाओ। पाठ्य-पुस्तकों से जीवन-गठनोपयोगी उपदेशपूर्ण उत्कृष्ट अंशों को कण्ठस्थ कर

लो, किन्तु स्मरण-शक्ति का अतिरिक्त प्रयोग मत करो। प्रति दिन का पाठ एक बार या दो बार मन लगाकर पढ़ो, फिर पुस्तक बन्द कर दो। इसके बाद पढ़े हुए विषय के सारांश की आलोचना मन ही मन करो और उस विषय का सारांश पूरा याद है या नहीं, इसकी जाँच करने के लिए पुस्तक फिर देख लो। इसके बाद फिर पढ़े हुए विषय को अपनी भाषामें कापी में लिख डालो, लिखकर फिर मिलाकर देख लो। इस बार जो भी भूलें या त्रुटियाँ मालूम हो जायँ, उनके प्रति दया-माया न रखनी चाहिये। कापी पर लिखते-लिखते सारी भूलों का अन्त हो जायगा। "Writing makes a perfect man"—सहज रीति से और भूलों के बिना पाठ सीखने का यही श्रेष्ठ कौशल है। परीक्षा के समय गधे की तरह परिश्रम करने से लाभ नहीं है। सारे वर्ष में बराबर समान प्रयत्न से थोड़े परिमाण में पढ़ते रहो, ऐसा करने से ज्ञान भी मिलेगा, ब्रह्मचर्य्य भी अटूट रहेगा। दिन-रात मस्तिष्क को विश्राम न देकर, श्रम करने से ब्रह्मचर्य्य को क्या साँस लेने का समय मिलता है? पढ़ने के दबाव से ही वह मुरझाया रहता है। आज के पाठ को कल के लिए जमा मत कर रखना। फिर भी यदि कोई अदूरदर्शी अध्यापक विद्यार्थी की शक्ति और सामर्थ्य के बारे में विचार करना भूल जायँ तो उस हालत में शरीर को बचा रखने के लिए पाठ कुछ घटा दो। यह बात तुम सर्वदा याद रखना कि, इस संसार में ऐसी कोई

सम्पद नहीं है या रह नहीं सकती जो अमूल्य धन स्वास्थ्य के अभाव की पूर्ति कर सके। रात को जागकर आमोद-प्रमोद गाना-बजाना तो करना ही नहीं चाहिये, यहाँ तक कि अध्ययन भी त्याज्य है। रात्रि-जागरण से वीर्य का नाश होता है, चित्त के संयम का ह्रास होता है, इस कारण सर्वनाश होता है। जिस पढ़ाई-लिखाई से सर्वनाश होता है, वह सर्वदा त्याग देने योग्य है। किन्तु इसी लिए यह मत समझ लेना कि तुम लोगों को दिन के समय पढ़ने का निषेध किया जा रहा है अथवा पढ़ने के समय को व्यर्थ के प्रसंगों में बिता देने का अधिकार तुम लोगों को दिया जा रहा है।

जो लोग तीनों समय स्नान नहीं करते उनके लिए दोपहर का स्नान नौ बजे के पहले ही कर लेना उचित है। कफप्रधान व्यक्तियों के अतिरिक्त सभी के लिए और पूर्वी बंगाल और आसाम के अतिरिक्त प्रायः सभी स्थानों में त्रिसन्ध्या स्नान हितकर है। स्नान के बाद तुरन्त ही अथवा अत्यन्त विलम्ब से

स्नान और आहार

भोजन मत करना। डेढ़ पहर दिन चढ़ने के पहले ही भोजन करना उचित है। अधिक दिन चढ़ने पर या नियम तोड़कर भोजन मत करना। भोजन का स्थान और भोज्य वस्तु पवित्र और साफ होना आवश्यक है।

ईश्वरार्पण किये विना अन्न ग्रहण न करना चाहिये। ब्रह्मज्ञ

व्यक्ति अपने को ब्रह्म जानकर और अन्न को भी ब्रह्म मान कर अन्न-ग्रहण द्वारा ब्रह्म-कर्म सम्पादन करें। भक्त को चाहिये कि श्रीभगवान की मानसिक सेवा कराकर प्रसाद लें। अखण्ड साधक को चाहिये कि तीन वार प्रणव (ॐ) उच्चारणपूर्वक खाद्य-वस्तु में जल के तीन छिड़काव करें और परमेश्वर के नाम-स्मरण के द्वारा भोज्य-वस्तु की समस्त सूक्ष्म अपवित्रता दूर होती जा रही है, ऐसा चिन्तन करें। इसके वाद खाद्य-पदार्थ छूकर आखें वन्द कर मन को भौंहों के वीच रख धीर श्वास और धीर प्रश्वास से कुल तीन वार या पाँच वार भगवान का द्वादशाक्षर नाम जप करना चाहिये। उस समय उनको ऐसा मनन करना चाहिये कि भोज्य-वस्तु के द्वारा श्रीभगवान की ही अर्चना हो रही है। इसके वाद हथेली में जल लेकर अर्थ चिन्तन करके "ॐ जगन्मङ्गलोऽहं भवामि" अर्थात् "मैं जगत् का कल्याणकारी हो रहा हूँ" यह मन्त्र तीन वार मन ही मन उच्चारण कर, फिर ॐकार का स्मरण करें और गण्डूष ग्रहण करें। भोजन करते समय कौर-कौर पर प्रति चर्वण में भगवान का नाम जपना चाहिये। भोजनोपरान्त नाभिमूल में मन रखकर फिर एक गण्डूष जल ले लें और तीन वार जगन्मङ्गलमन्त्र जपकर ओंकार उच्चारण करते-करते गण्डूष ग्रहण कर पात्र छोड़ देना चाहिये। पात्र छोड़ देने के वाद फिर भोजन न करें। (विस्तृत श्रीश्री उपासना

भोजन का अर्पण

प्रणाली" में देखना चाहिये)। मुसलमान "बिस्मिल्लाह नाम उच्चारण कर भक्तिभाव से खाद्य-पदार्थ ग्रहण करें। तात्पर्य यह है कि अर्पणहीन अन्न-पानीय कल्याणेच्छु के लिए अग्राह्य है।

परिपूर्ण आवेग के साथ अर्पण कर सकने से भोज्य-पदार्थ सब प्रकार के सूक्ष्म अकल्याणों और अपवित्रताओं से मुक्त हो जाता है। खाद्य-पदार्थ केवल सफाई के साथ पकाये जाने से ही ग्रहण योग्य हो जाता है, ऐसी बात नहीं है। यह सब प्रकार की अपवित्र दृष्टियों और कलुषित स्पर्शों से मुक्त रहना चाहिये। नहीं तो उससे आत्मिक अमङ्गल होता है। इसी लिए रजःस्वला स्त्रियों का स्पर्श किया हुआ अन्न अखाद्य है। जानकारी में अपवित्र पदार्थ न खाना चाहिये। अनजान में जितनी भी अपवित्रताएँ आ गयी हैं, वे अर्पण के द्वारा ही दूर हो जायँगी। भोजन करते समय यथासम्भव मौनी रहना ही उचित है और प्रत्येक ग्रास से अन्न ग्रहण करने के साथ-साथ ऐसा संकल्प करना उचित है कि गृहीत अन्न से जिस सुविशुद्ध वीर्य और उससे जिस बल की उत्पत्ति होगी, उसकी सहायता से संसार का अशेष मंगल साधित होगा।

दूध-घी, मक्खन-मट्ठा खाद्य-पदार्थों में श्रेष्ठ हैं। दूध-घी आदि मिलते रहें तो मछली-मांस न खाना चाहिये। मछली-मांस के बिना यदि कोई और उपाय न रहे तो खाना, किन्तु अतिरिक्त मसाला व्यवहार करना बिलकुल मना है। पक्षियों

खाद्य और अखाद्य

का मांस और अंडे चिकित्सक के विशेष उपदेश के बिना प्राण जाने की नौबत आने पर भी मत खाना। अतिरिक्त परिमाण में तीता, खट्टा, नमकीन और सरसों आदि त्याग देने चाहिये। औषध की या चिकित्सक की आवश्यकता के बिना प्याज, लहसुन प्रभृति को एकदम अखाद्य समझना चाहिये। इन चीजों की गन्ध मिलते ही ब्रह्मचर्य लम्बी साँस लेता हुआ भाग जाता है। जो कुछ उग्र और उत्तेजक है, वही निषिद्ध माना गया है, जो स्निग्ध है, सहज में हजम हो जाता है, वह सेवनीय है। भोज्य-प्रदार्थों का परिमाण, उनको तैयार करने और परोसने में शुद्धता, भोजन करते समय का मनोभाव इन वातों पर भोजन की श्रेष्ठता और निकृष्टता निर्भर करती है।

हाथ-पैर-मुख धोये बिना भोजन करने के लिए मत बैठो और अन्न वत्तीस वार चबाये बिना गले के नीचे मत जाने दो। क्योंकि पेट के भीतर दाँत नहीं हैं, भगवान ने मनुष्यों के सभी दाँत उसके मुख में ही लगा दिये हैं।

क्लेश के बिना जो खाद्य ठीक सयय पर हजम हो जाता है उससे अधिक भोजन न करना चाहिये। गुरुपाक पदार्थ लघुपाक पदार्थ की अपेक्षा अल्प परिमाण में खाना चाहिये। अपनी स्वास्थ्यरक्षा और

मिताहार

कार्य-शक्ति बढ़ाने के ही लिए तुम

भोजन कर रहे हो; यह बात भूल मत जाना। लोभ में पड़कर या जिद करके अतिरिक्त भोजन करना मूर्खता मात्र है। जो अधिक खाने की आशा करता है, उसका ही नाम भ्रष्टबुद्धि है। फिर खाद्य के ऊपर क्रोध करके उपवास करना भी मूर्खता है। मानसिक शक्ति बढ़ाने और स्वास्थ्य का सुधार करने के लिए नियमानुकूल उपवास हितकर है।

अपने अपने कर्मों की प्रकृति का विचार करके आहार के गुण और परिमाण का निर्धारण करना चाहिये। कठोर परिश्रमी लौह-शिल्पियों, फैक्टरी के मजदूरों, जहाज के खलासियों या खेतिहर हल जोतनेवाले गृहस्थों के भोजन की श्रेणी या परिमाण जो होगा, ध्यानपरायण योगियों, चिन्ताशील दार्शनिकों या धर्म-प्रचारकों या अध्यापकों के भोजन की श्रेणी का परिमाण ठीक वही नहीं हो सकता। गृही की और संन्यासी की जीवन-

भोजन का निर्वाचन और परिमाण

साधना एक नहीं है। इसी लिए भोजन भी एक नहीं है। यहाँ तक कि एक आत्ममोक्षपरायण संन्यासी और एक जगत्कल्याण-परायण संन्यासी का खाद्य-पदार्थ विभिन्न प्रकृतियों का होता है। तामसिक कार्यों और चिन्ताओं में जिसका शरीर क्षय होता है उसकी त्रिगुणात्मक देह का तामसिक अंश ही क्षय होता है, इसी लिए क्षयपूर्ति के लिए उसको तामसिक खाद्य ही सबसे अधिक उपयोगी है। राजसिक कर्मियों के लिए राजसिक

आहार की आवश्यकता है। योगियों, भक्तों और विद्यार्थियों के लिए सात्विक आहार की व्यवस्था की गयी है। जब जैसे आहार के प्रति रुचि होने लगती है, तब यही समझ लेना कि जानकारी या गैरजानकारी में उसी प्रकार के कर्मों में तुम्हारा शरीर क्षय प्राप्त कर रहा है और तुम्हारा मन उसी प्रकार की चिन्ता करने में अत्यन्त अभ्यस्त हो रहा है। आहार की रुचि किस तरफ जा रही है इस पर लक्ष्य रखने से ही तुम अपने अज्ञात जीवन की सात्त्विकता या तामसिकता का पता कुछ पा जाओगे। भूख पूरी मिट जाने के पहले ही थाली छोड़कर उठ जाने से जठराग्नि सर्वदा प्रदीप्त रहती है, इस लिए स्वास्थ्य बिगड़ने की आशङ्का दूर हो जाती है। कहावत है,—"कम भोजन से दूना बल, अति भोजन से रसातल।" भोजन के पहले और पीछे पेशाव करना चाहिये। पेशाव करते समय सर्वदा जल लेना चाहिये। मलत्याग की तरह मूत्रत्याग में भी शौच आवश्यक है। मूत्रत्याग के बाद जल सें शौच न करना अत्यन्त हानिकर कदाचार है। आचमन करते समय अति उत्कृष्ट रीति से मुख धोना चाहिये। मुख की गन्दगी सर्वदा रोगों की खान है।

पान न खाना चाहिये। हरीतकी और आमलकी ही ब्रह्मचारी के लिए प्रशस्त है। "यस्य माता गृहे नास्ति, तस्य माता हरीतकी"

मुख-शुद्धि

धूम्र पान मत करो। प्रसङ्गक्रम से यह भी कहे रखता हूँ कि एसेन्स, पुष्पसार,

पामेट्स, चाय, जर्दा, खैनी आदि को अस्पृश्य समझो। शरीर और मन से साफ रहो। आवश्यकता से अतिरिक्त कपड़े में बिलासिता भी त्याज्य है।

"छात्राणां अध्ययनं तपः।" विद्यालयों में भी बहुत बोलना छोड़ दो। जिन छात्रों का नैतिक चरित्र दूषित है, उनके अव्यर्थ दंशन को भुजङ्ग की तरह दूर ही त्याग देना चाहिये। यदि समझ सको कि कोई असच्चरित्र लड़का तुम्हारे नैतिक चरित्र को कलुषित करने का सुयोग ढूँढ़ रहा है या फन्दा डाल रहा है तो अधिक बातें मत करना, सीधेसादे रूपसे उसकी नाक पर उसके मुँह पर दस बार लात मार कर उसे निकाल बाहर करो। लोगों के सामने उसकी निन्दा करते हुए मत घूमो। क्योंकि इससे उसका सुधार न होगा। उसको जहाँ ही देख लो, उसे सोचने तक का भी मौका न देकर गरदन पकड़कर अच्छी तरह उत्तम मध्यम सीख दे दो। अपनी शक्ति से न सको तो सत्साहसी और चरित्रवान दूसरे जो लोग हैं, उनकी सहायता लो। दृढ़ संकल्प रक्खो, नैतिक अपमान कभी सिर झुकाये मत सहते जाना। सैकड़ों की संख्या में किशोर और युवक इस साहस के अभाव से चरित्र की अमूल्य सम्पद खो रहे हैं और सैकड़ों लम्पट पशु इस नीरवता का सुयोग लेकर अपनी पाशविक वृत्ति की

गुण्डादमन

चरितार्थता कर रहे हैं। इन भद्रवेशधारी प्रच्छन्नचारी गुण्डों का अत्याचार दमन करने के लिए व्यायाम करो, कुश्ती करो लाठी खेलना और मुष्टि-युद्ध सीखो, शारीरिक शक्ति संचय करो और शक्ति-प्रयोग के सभी कौशलों को यत्न के साथ आयत्त करो। आज गाँव-गाँव में दण्ड-बैठक के अखाड़े खोले जाने चहिये और वलवीर्यशाली तेजस्वी भारत-सन्तानों के जयोल्लास-मुखरित कलहास्य से दिङ् मण्डल निनादित हो जाना चाहिये। आज तुम लोग दुष्ट दमन करने में समर्थ हो जाओ।

आजकल प्रकृत शिक्षक दुर्लभ हैं, अति दुर्लभ हैं। किन्तु इसी लिए तुम लोग अपने अध्यापकों की त्रुटियों को पकड़ने में तत्पर होकर गुरुनिन्दा का पापभागी मत वनो।

गुरुनिन्दा-वर्जन

अपने अध्यापकों का सम्मान करो, उनको श्रद्धा करो और सद्व्यवहार और विनय के प्रभाव से उनका स्नेह आकर्षित करने की चेष्टा करते रहो। हृदय की संकीर्णता के कारण यदि वे तुम लोगों के प्रति स्नेहपरायण नहीं होते तो उस हालत में भी यही जान लो कि तुम्हीं लोगों में स्नेह आकर्षित करने की योग्यता का अभाव है। बहुत बोलना सीखने के लिए तुम विद्यालय में नहीं गये हो, इस कारण वर्तमान शिक्षापद्धति में सैकड़ों प्रकार की असम्पूर्णता रहने पर भी इसमें जितनी भी प्रेरणा पाना तुम्हारे लिए सम्भव है, उसका पूर्णांश ग्रहण करने के लिए तुमको सदा उत्सुक रहना चाहिये।

छुट्टी का दिन दिवा-निद्रा या ताश-पाशा आदि आलस्यमूलक खेलों में मत बिता देना। दस इष्टमित्र एक साथ मिलकर साहित्य-चर्चा करो। किस तरह तुम में से प्रत्येक के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कल्याण का उद्बोधन हो सकेगा, क्या करने से तुम लोग खुद ठीक-ठीक ब्रह्मचारी हो सकोगे और

छुट्टी के दिन का कर्तव्य

दूसरों को ब्रह्मचर्य के प्रति अनुरागी बना सकोगे, किस तरह भारत की सोयी हुई तरुण-शक्ति को जाग्रत करके राष्ट्रीय मङ्गल में प्रेरित किया जा सकेगा, अनाचार, अविचार, अत्याचार, प्रशमित हो सकेंगे, सती की लांछना दूर हो सकेगी, दुर्भिक्ष का दमन हो सकेगा, देशव्यापी मैलेरिया, चेचक प्रभृतिका प्रादुर्भाव घट सकेगा, इस सम्बन्ध में आलोचना करो। रविवार की दुपहरिया इस प्रकार आनन्द के बीच सार्थक बना देने के लिए तुम लोग प्रत्येक मुहल्ले में एक-एक पवित्रता-प्रसारिणी-समिति या सुनीति-संचारिणी-समिति स्थापित करो और उपयुक्त कार्यकर्ता और सदाचारी व्यक्ति पर उसके संचालन का भार

नेतृत्वका लोभ

देकर सब प्रकार के कल्याण-कर्मों में आदेश पालन करने की योग्यता संचय करने की चेष्टा करो। दलबन्दी करने में तत्पर होकर अथवा स्वयं नेता बन जाने की चाह से इस निर्दोष आनन्द के केन्द्र को

तोड़ मत देना। दूसरे को ही नेता बनने दो, परन्तु जिस तरह हो पूरा आनन्द लूट लेने के लिए अपने सरल उदार चित्त को सबके लिए उन्मुक्त कर दो और झगड़ा-कलह के प्रवेश-द्वारको सदा के लिए बन्द कर दो।

हस्त-लिखित पत्रिका में सब मिल कर निबन्ध लिखो, साप्ताहिक सम्मेलन में अग्निवर्षिणी वक्तृता देने का अभ्यास करो और भविष्य जीवन में तुम लोगों में से प्रत्येक ही राजा राम मोहन, विद्यासागर, विवेकानन्द आदि की तरह अथवा उनसे भी अधिक अमित यशस्वी समाज-सुधारक और समाज संगठक हो जाओगे, इसका अनुकरणाभ्यास चलाते रहो। मनुष्यता की पूर्णता प्राप्ति के लिए एक दिन शायद कितने ही विपत्संकुल दुःखबहुल चिर ऊबड़-खाबड़ मार्ग में तुम्हें चलना पड़ेगा, एक दिन शायद कितने ही असाध्य को साध्य बना देना पड़ेगा। एक दिन शायद वज्राघात को आशीर्वाद कह कर मृत्यु को पुरस्कार मान सादर आलिङ्गन करना पड़ेगा। कर्मों की दृष्टि से आपाततः यह हो या न हो, भावों की दृष्टि से उसके लिए तुम लोगों को अभी से तैयार होना पड़ेगा। जीवन को सहस्रमुखी अभ्युदय देना पड़ेगा, यह बात कभी भूल मत जाना।

समाज-सेवा का अनुकरण

अपराह्न में विद्यालय के पाठाभ्यास के कामों से मस्तिष्क को बोझ से लाद मत देना। समय और स्फूर्ति रहे, तो थोड़ा

कुछ लिख पढ़ सकते हो, थकावट रहने पर कोई जरूरत नहीं है। "सिर और पेट दोनो ही रोगों की जड़ हैं"—अर्थात् सिर और पेट को ठंढा रखने से सभी रोग आक्रमण का सुयोग पाते हैं। अपराह्न में खेल-कूद करना, नदी के किनारे या खुले मैदान में टहलना या दूर तक रास्ते में निर्दोष संगीत या हास्यालाप या साधु-महात्माओं का संसर्ग विशेष रूप से अनुमोदन योग्य है। जिनको दोनों समय व्यायाम का अभ्यास है अथवा जो लोग प्रातःकाल व्यायाम नहीं करते उन्हें चाहिये कि सूर्यास्त के साथ ही साथ व्यायाम समाप्त कर दें। क्योंकि सूर्यास्त के बाद स्नान करने से कफ बढ़ जाता है।

अपराह्न का कर्त्तव्य

व्यायाम के बाद उपयुक्त समय तक विश्राम करके ही स्नान करना चाहिये अथवा भीगे गमछे से सभी अंगों को अच्छी तरह पोंछ डालना चाहिये। सिर धोना और प्रातःकाल की तरह आँखों में जल सींचना भी हितकर है।

सन्ध्याकाल भी प्रातःकाल की ही तरह भगवदुपासना के लिए अतिशय प्रशस्त है। उपासना के लिए एक निर्धारित स्थान और एक निर्दिष्ट आसन रख सकें तो अच्छा होगा। इस आसन को जहाँ तक हो सके, अपने धर्मगुरु के अतिरिक्त और किसी को मत छूने देना। प्रति दिन तो न कर सकोगे, किन्तु

सम्मिलित उपासना और कीर्तन

सप्ताह में एक दिन मुहल्ले के सभी लड़कों को एक साथ मिलकर सम्मिलित उपासना और कीर्तन से भगवान की गुण-प्रशंसा और आराधना करनी चाहिये। जिस परम प्रेममय अखण्ड चैतन्य का गुणवर्णन हो रहा है, कीर्तन काल में तुम लोग एक मात्र उन्हीं में संगीत के सहारे डूबे रहने की चेष्टा करना। कीर्तन या धर्मसंगीत तुम्हारे मनोभावों को परिपुष्ट कर सके, यही वांछनीय है। इस कारण महाजन-पदों के प्रत्येक शब्द का अर्थ समझने की चेष्टा करनी चाहिये। पद-रचयिता की रचना में यदि कोई अस्पष्टता या असम्पूर्णता रहे, तो अपने हृदय के द्वारा तुम उसे पूर्ण कर लेना और तुम्हारे धर्म-विश्वास और साधन-धर्म के अनुकूल या प्रतिकूल व्याख्या करना सम्भव हो तो तुम अपने भाव के अनुकूल जो व्याख्या है उसे ही मान लो और उसके ही रस का सम्भोग करो। कीर्तन के समय उछलकूद त्याज्य है। क्योंकि, अधिकांश स्थानों में अतिरिक्त अंग-संचालन, ध्यानावेश का विरोधी है।

भगवद् विषयक कोई भी संगीत बहुत लोग मिलकर गा सकते हैं, कीर्तन का यही मतलब समझना चाहिये। मन में यह विचार मत लाना कि, राधाकृष्ण-तत्त्व विषयक बातों के बिना अन्य संगीत कीर्तन नहीं हैं। राधाकृष्ण-तत्त्व समझे बिना उस

विषय के कीर्तन से ब्रह्मचर्यपालक को विन्दुमात्र लाभ नहीं होता। जिस संगीत से तुम्हारी नीच प्रवृत्तियाँ घुल-पुछकर दूर

कीर्त्तन किसे कहते हैं ?

हो जायँगी, समस्त पापों की मलिनता समस्त कलुष-कालिमा नाम-प्रवाह के तरंगाभिघात से अथाह जल में डूब जायगी, जो संगीत तुमको धर्म और कर्मकी साधना में प्रेरणा देगा, स्वार्थान्ध नेत्रों में दिव्य दृष्टि खोल देगा संकीर्ण हृदय को प्रशस्त बना देगा, संकुचित वक्षको उदार और सबको आलिंगन करने योग्य बना देगा, विद्वेष-जर्जर चित्तमें प्रेम प्रदान करेगा और ईर्षा से जर्जरित नेत्र-पल्लवों में आँसू सींच देगा, वही यथार्थ कीर्त्तन है। जिस कीर्तन से मन के साथ प्राण का संयोग विचलित नहीं होता, भाव के साथ भाषा का विच्छेद नहीं होने पाता, सुर के साथ चित्त की प्रशान्ति का विरोध नहीं रहता और तालमान के साथ रसास्वादन की दूरी उपस्थित नहीं होती वही यथार्थ कीर्तन है। जिस कीर्तन से मनुष्य भगवान् की तरफ दौड़ जाता है और भगवान मनुष्य की तरफ दोनों बाहें पसारकर दौड़ आते हैं उसी परम रससे सिक्त प्राण-मनमोहक कीर्तन के आनन्द में अपने को बिक जाने दो—व्यर्थ के मौज-मजाक में परिणत करके कीर्तन की अलंघनीय मर्यादा का लंघन मत करो।

इसके अतिरिक्त दूसरे समयों में भी सुअवसर मिलने से भजन-गान करना चाहिये। भगवान् के नाम के सहयोग से

ध्रुपद या मालसी गान निभृत साधक के लिए विशेष उपयोगी है। समान भाव के भावुकों के एकसाथ मिल जाने पर ध्रुपद, मालसी या कीर्तन ही हो सब प्रकार के संगीतों से ही प्रेमानन्द का उदय होता है। यंत्र-संगीत मन एकाग्र करने का परम सहायक है। इस कारण सुयोग मिलने पर स्वरद, सुरवहार, सितार, एसराज प्रभृतिका भी अभ्यास करना चाहिये। किन्तु दूसरों को सुनाकर बहादुरी लूटने का लोभ रहने से यह उद्देश्य बहुत अंशों में चौपट हो जायगा। संगीत सीखने के लिए किसी तरह भी असज्जन का संग मत करना, जहाँ-तहाँ मत जाना, हाट-बाजार में कीर्तन

कीर्तन में कुसंग

आदि न करना, कुस्थान से लाये गये यन्त्रको स्पर्श भी मत करना या वैसे यन्त्र के द्वारा संगीत भी मत करना। संगीत ने इस देश के सैकड़ों हजारों युवकों का नाश किया है। इस कारण तुम लोगों को जरा अतिरिक्त मात्रा में ही सतर्क होना पड़ेगा। धर्मलाभ अथवा निर्दोष आनन्द-प्राप्ति के उद्देश्य के बिना गीत गाने या सुनने को अपराध मान लेना। सर्वसाधारण में धर्म-भावना फैलाने की साधना के लिए संगीताभ्यास प्रशंसनीय है।

छोटे-छोटे भाई-बहनों को उनके मस्तिष्कों के गठन के अनुसार धर्मभाव में प्ररोचित और उपासना में उत्साहित करने की चेष्टा करनी चाहिये। इष्ट-मित्रों और अपने परवर्ती छात्र-समाज में इस महाभाव की बाढ़ लाने में कभी चेष्टा की शिथि-

लता मत करो। कामातुरता ने जिनको हताश, दुर्बल और अविश्वासी बना दिया है, असंयम जिनके मस्तिष्क, स्नायु और मांस-पेशियों को राक्षस की भाँति कच्ची हालत में ही चबाकर खा डाला है, जीवनी-शक्ति खोकर जो लोग साहस, बल, वीरता और मनुष्यत्व से वञ्चित होकर

उपासना में उत्साह-दान

अभागों का घृणित जीवन बिता रहे हैं, इन्द्रियों की अस्वाभाविक उत्तेजना से जो लोग कातर हो गये हैं, अनजान में लगातार वीर्यक्षय होने के कारण जो जीवन की अपेक्षा मरण को ही अधिकतर काम्य समझ रहे हैं, जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, जो अकर्मण्य हैं, और जिनकी चित्तवृत्तियाँ विमुख और विकृत हैं, त्रिलोक में उपासना ही उनका एकमात्र मित्र है। उपासना ही उनके पतित जीवन की परम पावनी महाशक्ति है। उपासना उनके रोगजर्जर दुर्बल शरीर को स्वस्थ बनावेगी, उनके अवश मन में असीम शक्ति का संचार करेगी।

जिनको महापुरुषों की कृपा मिल चुकी है, वे जो भी धर्माव-लम्बी क्यों न हों, उनके लिए कुछ अतिरिक्त बातें बता देने की जरूरत समझता हूँ।

इष्टमंत्र जगतेर सर्व मन्त्र सार,
एकमात्र इष्ट नामे जगत्-उद्धार।
देह, मन, मेधा, बुद्धि, चित्त, आत्मा, प्राण,
एकमात्र इष्ट नामे सवार कल्याण।

संसार के सभी मंत्रों का सार इष्ट मंत्र है। एकमात्र इष्ट-नाम से जगत् का उद्धार होता है। शरीर, मन, मेधा, बुद्धि, चित्त, आत्मा, प्राण—इन सभी का कल्याण एकमात्र इष्ट नाम से ही है।

और भी—

नामेते कल्याणचय रहे लुकाइया,
लाभ कर से कल्याण साधन करिया।

नाम में कल्याण-समूह छिपा रहता है। साधना करके उस कल्याण को प्राप्त करो।

परन्तु,—

अल्प करियाओ यदि जपो प्रतिदिन,
उन्मेषिवे ब्रह्मतेज आसिवे सुदिन।
एक दिन दिवाराति एक दिन वाद,
कम लाभ ताहे किन्तु वेशी अवसाद।

यदि थोड़ा भी प्रतिदिन जपते रहोगे तो ब्रह्मतेज विकसित होगा और अच्छे दिन आवेंगे। एक दिन दिन-रात जपते रहोगे और एक दिन नागा करोगे तो उससे लाभ तो कम होगा किन्तु अवसाद ज्यादा होगा।

किन्तु उपासना यथासम्भव बाह्य आडम्बरहीन और धर्म-जीवन वाक्य-आड़म्बरहीन होना आवश्यक है। तुम एक बड़े

भक्त या कोई महान साधक हो, यह बात जन-समाज में जाहिर करने की दुष्प्रवृत्ति को दमन करना होगा।

दाद में जैसी खुजलाहट रहती है, अपने को साधक कहकर प्रचार करने की भी वैसी ही एक अति भद्दी खुजलाहट रहती है। इसको दमन करके चलना पड़ेगा। किसी भी प्रकार का कर्म क्यों न हो, आडम्बर सर्वथा त्याग देना चाहिये।

तपस्या-विहीन वाक्य-आड़म्बरे,
नाहिक कल्याण, वृथा कर्म बाड़े।

तपस्या बिना, बातों का आडम्बर रहने से कल्याण नहीं होता, व्यर्थ के काम बढ़ते हैं।

साधना जितनी ही निविड़ होगी, गम्भीर होगी, गुप्त होगी, परमानन्द का सोता उतना ही खुल जायगा। इस लिए

वहिरङ्ग कीर्त्तनेर करि अवसान,
महामन्त्रे प्राणयज्ञे कर आत्मदान।

वाहरी कीर्त्तन का अन्त करके महामन्त्र से प्राणयज्ञ में आत्म-दान करो।

भगवान के नाम के बल से ही तुम्हारी इच्छा में जगत्-कल्याण के असीम सामर्थ्य का समावेश होगा। क्योंकि, वे ही सभी जगत्कल्याण के मूलीभूत उद्गम-स्थल हैं और ब्रह्माण्ड के समस्त तेज, सभी वीर्य, सभी शक्तियाँ उनके ही चरणकोण से छिटकती हैं।

महामन्त्र जपि, दिवस-रजनी,
पदानत कर विपुला धरणी।
निष्काम प्रेरणा हय ना निष्फल,
विश्व-शुभेच्छाय जागे ब्रह्मवल।
महानाम-योगे विश्वेर विकाश,
नाम-वले विश्व हवे ब्रह्मदास।

दिनरात महामन्त्र जप कर विपुला पृथ्वी को पदानत कर दो। निष्काम प्रेरणा निष्फल नहीं होती, विश्व की शुभेच्छा से ब्रह्म-वल जाग उठता है। महानाम के द्वारा विश्व का विकाश होता है। नाम के वल से विश्व ब्रह्मदास हो जायगा।

नीरवता के वीच से ही साधन की अव्यर्थ ज्योति छिटकती है और साधक की मौन इच्छा समग्र मानव-समाज के मन के ऊपर अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर लेती है। नीरव, निभृत, गुप्त कल्याणेच्छा, सवकी गैरजानकारी में उपयुक्त आधारों में नवीन भावों की उद्दीपना उत्पन्न करके आलसी को उत्साहवान और शिथिल को दृढ़ कर्मी वना देती है।

मौनसिद्ध ब्रह्मवीर्य्ये कर्म्मेर उच्छ्वास,
वाक्य योगे उपदेश व्यर्थ वहुभाष।

मौनसिद्ध ब्रह्मचर्य से कर्म का उच्छ्वास होता है। वातों के द्वारा उपदेश देना वहुत वोलना मात्र है, वह व्यर्थ ही होता है।

किन्तु आचार्य द्वारा जितनी भी बातें उपदेश में कही गयी हैं, वे निर्भूलरूप से और धारावाहिक रूप से मानी जानी चाहिये।

निर्भुल साधने हय निर्भुल कल्याणचय,
अखण्ड साधने प्रेम अखण्ड जीवनमय।

निर्भूल साधना से निर्भूल कल्याण समूह की प्राप्ति होती है। अखण्ड साधना से जीवनमय अखण्ड प्रेम मिलता है।

और भी चाहिये भगवद्भक्ति और निर्भरता। भगवान को ही परम गुरु जानकर, भगवान को ही पथ-प्रदर्शक जान कर, भगवान को ही जीवन-समूह का कर्णधार जानकर उनके ऊपर सदा निर्भर करना चाहिये। उनको ही सखा जानो, उनको गुरु समझो। उनके नाम को उनका प्रकाश जानो, उनकी विभूति को उनकी प्रतिमूर्ति मान लो। "जयगुरु श्रीगुरु" कहकर अपने को उनके ही चरणों के नीचे उपहार चढ़ा दो, और उनका त्रिलोकविजयी परम पावन महानाम स्मरण करके सदा अपनी आत्मापर विजय प्राप्त करो।

भगवद्भक्ति और निर्भरता

श्रीगुरु-निर्भरे श्रीनाम उज्ज्वल.
श्रीनाम-निर्भरे वुक भरा वल।

श्रीगुरु पर निर्भर रहने से श्रीनाम उज्ज्वल होता है। श्रीनाम पर निर्भर रहने से हृदय में वल भर जाता है।

रात्रि का आहार हलका होना आवश्यक है। विशेष गुरुजन को छोड़कर, अर्थात् जिनकी थाली में बचा भोजन प्रसादरूप से ग्रहण करने में द्विधा न मालूम होगी, ऐसे व्यक्ति के अतिरिक्त,

दूसरों का जूठा खाना अनुचित है। रोगी, क्रोधी, कामी, दुराचारी, कदाहारी व्यक्तियों का खाया हुआ जूठा खाना त्याग दो। देश में दूसरों का उच्छिष्ट प्रसादरूप में ग्रहण करने की रीति अवश्य प्रचलित है किन्तु यह रीति स्वास्थ्य-विज्ञान की विरोधिनी है।

उच्छिष्ट और प्रसाद

रात में डेढ़ पहर से अधिक जागरण हितजनक नहीं है। प्रथम रात्रि में अर्थात् रात के आठ बजे से सो रहना और अन्तिम रात में जागना ब्रह्मचारी के लिए विशेष रूप से प्रशस्त है। सोने के पहले एक गिलास ठंढा पानी पीकर प्रार्थना करते-करते सो जाना चाहिये। सोने के पहले जो लोग ईश्वर-चिन्तन करते हैं, नींद के समय ही उनका मन अनजान में ही सात्त्विक गठन अर्जन करता रहता है। जो लोग अन्तिम रात्रि में पड़े-पड़े सोते रहते हैं, नींद की दशा में उनका ही वीर्यक्षय अधिक होता है। सारे वर्ष में ही अन्तिम रात में उठकर पढ़ने की रीति प्रचलित होना आवश्यक है। इससे शरीर खराब होगा, ऐसी बात जो लोग कहते हैं वे जानकारी न रहने से ऐसा कहते हैं। अन्तिम रात्रि का पढ़ना-लिखना जितना याद रहता है, उतना और किसी भी समय में नहीं होता। फलस्वरूप थोड़े समय में थोड़े परिश्रम से बहुत सीखा जाता है। इस समय जो लोग श्रीभगवान के नाम

निद्रा और जागरण

की सेवा करते हैं, वे अति भाग्यवान हैं। पहले-पहल अन्तिम रात्रि में जागने से अभ्यासहीन शरीर कुछ दुःखी और रूखा-सूखा मालूम होने लगता है। ऐसी अवस्था में तिल का तेल सिर पर लगाना चाहिये और प्रतिदिन स्नान के पहले सर्वाङ्ग में, विशेष रूप से पैरों के तलवों में और छाती में अत्यन्त भली भाँति विशुद्ध सरसो का तेल मलना चाहिये। शेष रात्रि में जागने का अभ्यास करनेवालों के लिए प्रातःस्नान जैसा ही हितकर है, वैसा ही आरामप्रद भी है। किन्तु प्रातःस्नान करने में अभ्यस्त लोगों के लिए दोपहर को या सन्ध्या के समय स्नान करना, कम से कम सिर धोना और भीगे गमछे से शरीर पोंछना आवश्यक है, नहीं तो शरीर कृश हो सकता है।

दिनलिपि

रात में सोने के पहले ही संक्षेप में दिन-लिपि (डायरी) लिख डालो। सोने के पहले दिन-लिपि लिखने से किसी-किसी के लिए अनिष्टकर होता है। सोने के पहले दिन भर के समस्त दुष्कर्मों की बात स्मरण करने के बाद अनेक दुर्बलचित्त व्यक्तियों के मन से नींद के समय भी वे सब चिन्ताएँ दूर नहीं होतीं। ऐसे लोगों को दूसरे दिन प्रातःकाल दिन-लिपि लिखनी चाहिये। दिन-लिपि लिखते समय कभी अपने चरित्र का कोई अंश छिपा मत रखना,

या झूठ मत लिखना।* इसे कभी असावधानता से जहाँ तहाँ फेंक मत रखना, या किसी फालतू आदमी को मत देखने देना। जीवन की कोई भी गुप्त बात किसी निन्दुक आदमी को मत जानने देना। जो लोग तुमको पापी समझ कर घृणा नहीं करते, पतित समझकर उपेक्षा नहीं करते, असमर्थ कहकर निन्दा नहीं करते, या लोकदृष्टि में तुमको छोटा बना देने के लिए जरा भी आग्रह प्रकट नहीं करते, किन्तु तुमको उन्नति-पथ में चलने वाला बना देने के लिए जो कपटहीन चित्त से, प्राणों की बाजी लगाने वाले आग्रह से और आवेग से खूब कठोर परिश्रम स्वीकार करने में भी अकुण्ठित रहते हैं, ऐसे महाप्राण, सर्वजनहितैषी, लोक-कल्याणकारी किसी चरित्रवान पुरुष को यह दिन-लिपि दिखा कर जीवन-गठन के विषय में जरूरी उपदेश, उत्साह और प्रेरणा

---

*दिन-लिपि लिखते समय कुछ विषयों पर विशेष दृष्टि रखने की आवश्यकता है। इस लिए अयाचक आश्रम से "दिन-लिपि या दैनिक आत्मशोधन" नामक एक प्रकार की डायरी प्रकाशित हुई है। वह इस तरह छापी गयी है, जिससे 'डायरी' के लिए पृथक् वही न तैयार करके प्रत्येक प्रश्न के सामने 'हाँ' और 'नहीं' लिख देने से ही काम चल सकता है। उस ग्रन्थ में अनेक मूल्यवान उपदेश भी जोड़ दिये गये हैं। एक दिन-लिपि से कई महीनों का काम चलता है।

आत्म-विश्लेषण ग्रहण करनी चाहिये। कभी-कभी निर्जन स्थान में बैठ कर अतीत दिवसों के साथ वर्तमान दिवसों की तुलनामूलक आलोचना करनी चाहिये और यदि ऐसा जान पड़े कि, तुम नीचे गिरते जा रहे हो तो, उस हालत में हताश न होकर उन्नत होने के लिए नवीन संकल्प कर लेना चाहिये। और यदि यह धारणा उत्पन्न हो जाय कि तुम उन्नत हो रहे हो, तो उस हालत में और भी उन्नति करने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिये। इस प्रसंग में एक बात कहे रखता हूँ कि, जो लोग नैराश्य बढ़ाते हैं, उत्साह देना नहीं जानते, बुरी बातों की ही तरफ अँगुली दिखाते हैं, अच्छी बातों की तरफ दृष्टि आकर्षित करना जिन्होंने नहीं सीखा है, जो केवल भय दिखा सकते हैं, सान्त्वना या साहस नहीं दे सकते, उनका साथ हर तरह से छोड़ देना चाहिये। तुम्हारे जीवन की दुःख-दुर्गति का सब कुछ पूरा जानते हुए भी जो लोग केवल आशा की वीणा की ही झनकार देते हैं, प्राणों में उत्साह का ही संचार करते हैं, "गिरते-गिरते भी तुम लोग उठ खड़े होगे, मरते-मरते भी तुम लोग बच जाओगे, तुम्हारा ध्वंस नहीं है, तुम्हारी मृत्यु नहीं है, तुम्हारा पतन नहीं है, तुम अमृत के पुत्र हो, तुम लोग अमरत्व के अधिकारी हो, दिव्य वीर्य से तुम लोगों का जन्म हुआ है," आश्वासन की यह वाणी ही जो लोग हरदम सुनाते रहते हैं, और जो लोग

संकल्प-रक्षा के अनुकूल उपदेश देते हैं, उनको अपने जीवन का सखा जान रखो।

अकेले और कठोर शय्यापर सोना चाहिये। दूसरे के साथ एक बिछावन व्यवहार करना, या कोमल शय्या पर सोना, और अपने साथ आप ही शत्रुता पैदा करना एक ही बात है। गोद का तकिया तुरन्त ही संयम नाशक है। अधिक ऊँचे तकिये पर सोने से नाक टेढ़ी हो जाती है। बायीं तरफ करवट लेकर सोने से हृत्पिण्ड की क्रिया में कुछ विषमता उत्पन्न होती है। फिर दायीं बगल सोने से यकृत् की क्रिया में विकृति होती है। चित होकर सोने से श्वास लेने में बाधा पहुँचती है और ब्रह्मचर्य की भी विशेष

शयन

हानि होती है, क्योंकि मेरुदण्ड के अन्तिम छोर से असंख्य रतिस्नायुएँ चारों तरफ फैल कर सभी जनन-सम्बन्धी अङ्ग-प्रत्यङ्गों के साथ मिली हुई हैं,—चित होकर सोने से यह स्नायुमण्डली उष्णता के कारण उत्तेजित होकर अनर्थ उत्पन्न करती है। फिर पट होकर सोने से भी जननेन्द्रिय के साथ शय्या के संस्पर्श से लिङ्ग-सम्बन्धी उत्तेजना पैदा हो सकती है और अनजान में काम-भाव जाग्रत और वीर्य स्खलित हो सकता है। इसी लिए महर्षि चरक ने बैठ कर सोने की व्यवस्था की है, किन्तु सब के लिए ऐसा अभ्यास उचित न होगा। इस कारण साधारणतः सोते समय बायीं बगल को ही लेना चाहिये। जिनके हृत्पिण्ड में कोई रोग है

उनको दायीं वगल में सोना चाहिये, किन्तु भोजन के वाद तुरन्त ही दायीं वगल सोने से अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है। आहार के वाद पन्द्रह मिनट विश्राम और पाँच मिनट चहलकदमी करनी चाहिये। भोजन के पहले मलाधार को और सोने के पहले मूत्राधार को खाली कर लेना उचित है, नहीं तो स्वप्नदोषादि उपद्रवों की प्रचुर सम्भावना रहेगी। सोने के पहले एक गिलास ठंढा जल पीना चाहिये, और नींद की हालत में तुम्हारा मन केवल भगवान सम्वन्धी पवित्र विषयों का ही अनुशीलन और अनुसरण करता रहे, वार-वार ऐसा संकल्प करना चाहिये। सरल मेरुदण्ड से आसन जमा बैठकर इक्कीस वार योनि-मुद्रा करके नींद न आने तक नाम जपना चाहिये। कभी कुकुर-कुण्डली में अंगों को सिकोड़ कर मत सोना, सीधे सरल भाव से सोना चाहिये। नहीं तो शरीर का गठन खराव हो जायगा।

स्त्री-जाति में मातृभाव की रक्षा करनी चाहिये। स्त्री को देखते ही "जय माँ" "जय माँ" हुंकार कर उठो, मानो तुम उनकी गोद के वच्चे हो, उनके स्तन का दूध पीकर ही मानो तुम्हारा शरीर परिपुष्ट हो गया है, उनके स्नेह आदर के वीच से ही मानो तुम्हारा मनुष्यत्व परिपुष्टि पा रहा है, ऐसा सकृतज्ञ सन्तानभाव मन ही मन पोषण करना चाहिये। किसी स्त्री के मुख पर नजर पड़ जाने पर मन ही मन सोचना शुरू कर देना चाहिये, यह मानो तुम्हारी माता

स्त्री-जाति में मातृभाव

का मुँह है, स्त्री का कंठस्वर कानों में पहुँचने पर सोचना चाहिये, यह मानो तुम्हारी माता का कंठस्वर है और 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः' कह कर उनको प्रणाम करना चाहिये। वालिका या तुम्हारी माँ की अपेक्षा कम उम्र की किसी स्त्री के प्रति दृष्टि पड़ जाने पर सोचने लगो—एक दिन मेरी माँ ऐसी ही थीं, माता के समान उम्र की किसी पर दृष्टि पड़ने पर सोचने लगो—मेरी माँ भी तो इसकी ही तरह हैं, माँ की अपेक्षा कड़ी उम्र की स्त्री पर दृष्टि पड़ जाने पर मन ही मन सोचने लगो—एक दिन मेरी माँ ऐसी हो जायँगी। स्त्रियों पर नजर पड़ते ही वज्रवत् गर्जन के साथ गाने लगो—'वन्दे मातरम्', और मन ही मन सोचने लगो, आद्याशक्ति भगवती तुम्हारी जननी हैं, वीर-प्रसविनी भारतभूमि तुम्हारी जननो हैं, रमणी-विग्रह-धारिणी सभी तुम्हारी जननी हैं, सती सावित्री भी तुम्हारी जननी हैं, कलङ्किनी कुलटा भी तुम्हारी जननी हैं—तुम्हारी जननी सभी हैं, तुम सभी की सन्तान हो। किसी भी स्त्री को देखने पर यदि उसके प्रति भोग करने का भाव उत्पन्न हो जाय तो समझ लो नरक में डूवने में अव देर नहीं है। सम्भव है कि, उनकी तरफ व्यक्तिगत रूप से तुम्हारी भोग-बुद्धि न पहुँची हो, किन्तु उनको देखकर यदि तुम्हारे मन में भाव उठ जाय कि यह अमुक की भोग्या हैं, तो उसी हालत में ही सर्वनाश समझ लो। तुमको सोचना चाहिये यह अमुक की माँ हैं, अमुक की

मौसी हैं, अमुक की चाची हैं, अमुक की वड़ी माँ हैं या अमुक की वूआ जी हैं—इसी प्रकार। यह मत सोचना—यह किसी की स्त्री हैं परन्तु सोचना पड़ेगा यह मेरी ही तरह किसी की माता हैं या मातृस्थानीया हैं, सोचना पड़ेगा, मेरी ही तरह कोई सन्तान इनका अमृतमय स्तन्य-रस पीकर जीवन धारण कर रही है, भावी भारत का कोई वज्र-निर्घोषकारी वीर सन्तान शायद इनकी ही अशेष स्नेह की शक्ति से दिन पर दिन वढ़ रहा है, एक समाज, एक जाति, एक देश के चरणों की लौह-शृङ्खला जो लोग चूर्ण करते हैं, उनमें से कोई शायद इनकी ही गोद में आज नाच रहा है, खेल रहा है, और 'माँ' पुकारना सीख रहा है।

पहले ही वता चुका हूँ, मन में कोई भी अपवित्र भाव उठने के साथ ही वीर्य स्थान-भ्रष्ट हो जाता है और शुक्रकोष में उपयुक्त परिमाण में आकर जमा होते ही नींद की हालत में निकल जाता है। इस कारण कुदृश्य न देखना चाहिये, कुवचन न वोलना चाहियें, कुविषय का चिन्तन न करना चाहिये। सत्सङ्ग में रहना,

निर्भर करो और निर्भय वनो

सद्ग्रन्थ अध्ययन, व्यसन-विलास त्याग, पवित्र परिमित आहार, उच्चाकांक्षा और सर्वदा ऊँचे कार्यों में लिप्त रहना, और भगवान में आत्म-समर्पण प्रभृति के द्वारा अध्यवसाय के साथ अपने को दिन पर दिन असीम यत्न से गठित करते रहो। आत्म-गठन के मार्ग में कभी-कभी यदि निद्रा-स्खलन के द्वारा

पीड़ित भी हो जाओ तो भी हताश मत हो जाना। इस संसारमें चेष्टा के असाध्य कुछ नहीं है, योग्य चेष्टा करने से योग्य सफलता आवेगी ही। नित्य व्यायाम और नित्य उपासना ने सैकड़ों अभागों को वचा लिया है, तुमको भी वचा देगी। निर्भर करो, निर्भय वनो। निद्रावस्थामें वीर्य स्खलित होने पर उठ जाओ, पुरुषेन्द्रिय और अण्डकोष शीतल जल से धो डालो और मूत्रत्याग के वाद एक गिलास ठंढा जल पीकर भगवान का नाम लेते-लेते फिर सो रहो।

वीर्य-क्षय होने पर क्या करना चाहिये

वीर्य-स्खलन के वाद आधा घंटा सो रहना। इससे उपकार होता है। उपकार और भी अधिक होता है, यदि यह निद्रा अवसन्नता के कारण न हो, वरन् नाम-सेवा के फलस्वरूप हो। इसके वाद नींद टूट जाने पर समूचे शरीर में अच्छी तरह तेल की मालिश करके स्नान कर लेना चाहिये और स्नानानन्तर शक्ति-स्वरूप श्रीभगवान से वीर्य धारण करने की शक्ति पाने के लिए आकुल प्राण से प्रार्थना करनी चाहिये। 'योनिमुद्रा'* के अवलम्बन से भौंहों के बीच मन को स्थिर करके उस स्थान में परम पुरुष का ध्यान करना विशेष हितकर है। वीर्यक्षय के वाद छः घण्टों के अन्दर व्यायाम, संगीत,

---

* योनिमुद्रा प्रभृति ब्रह्मचर्य-सहायक प्रक्रियाएँ ग्रन्थकार-रचित 'संयम साधना या वीर्यक्षय का प्रतीकार' नामक पुस्तक में विस्तार के साथ लिखी गयी हैं। इस कारण उनका यहाँ फिर उल्लेख नहीं किया गया।

दूर का रास्ता चलना, या कठोर श्रम...
चाहिये। महर्षि मनु ने ऐसे वीर्यक्षय के प्र...
जप की व्यवस्था की है। तुम लोग भगवा...
गायत्री या गुरुप्रदत्त महानाम का जप क...
सब प्रकार की उत्तेजनाओं का ह्रास करने...
की भाँति श्रेष्ठ उपाय इस जगत् में ...

नाम की शक्ति

निर्भर करो, जितनी भी ...ओं में क्यों न पड़े रहो, नाम ही समस्त विपत्तियों का भंजन करनेवाला है। उत्पात जितना भी बढ़ता जाय, तुम भी नाम में उतना ही अधिक लगे रहना।

दर्प के साथ गाने लगो—

घोर निशा आवे तो आवे, मैं तो उससे भीत नहीं,
मेरा साथी परम नाम है, बार-बार ... वही!
डूबें चन्द्र-तारका-राशि भले ही हियको कुछ भी व्यथा न...
तिमिर-विनाशन, मोह-निवारण नाम को मैं त्यागूँ ...
आँधी-झंझा बहे जोर से, नाम में चित्त लगेगा ...
वर्षा की शतधारों में भी नाम-छत्र का सिर पर ...
निर्भय वाणी नाम सुनावे, प्राण की शंका ...
ऊर्म्मिक्षुब्ध भवसागर को भी जीर्ण तरी में ...

नाम पर निर्भर करो, देखोगे तमसावृत अमावस्या में भी तुम्हारे लिए पूर्णिमा का चन्द्र उग...